लेश्या : एक विश्लेषण

☆ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

लेश्या जैन-दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। जैन-दर्शन के कर्म-सिद्धान्त को समझने में लेश्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विराट विश्व में प्रत्येक संसारी आत्मा में प्रतिपल प्रतिक्षण होने वाली प्रवृत्ति से सूक्ष्म कर्म पुद्गलों का आकर्षण होता है। जब वे पुद्गल स्निग्धता व रूक्षता के कारण आत्मा के साथ एकमेक हो जाते हैं तब उन्हें जैन-दर्शन में 'कर्म' कहा जाता है।

लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक समूह हैं। उनमें से एक समूह का नाम लेश्या है। उत्तराध्ययन की बृहत् वृत्ति में लेश्या का अर्थ आणविक आभा, कान्ति, प्रभा और छाया किया है।[1] मूलाराधना में शिवार्य ने लिखा है "लेश्या छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव परिणाम हैं।[2] प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक आभा और उनसे प्रभावित होने वाले विचार इन तीनों अर्थों में लेश्या पर विश्लेषण किया गया है। शरीर का वर्ण और आणविक आभा को द्रव्यलेश्या कहा जाता है[3] और विचार को भावलेश्या।[4] द्रव्यलेश्या पुद्गल है। पुद्गल होने से वैज्ञानिक साधनों के द्वारा भी उन्हें जाना जा सकता है और प्राणी में योगप्रवृत्ति से होने वाले भावों को भी समझ सकते हैं। द्रव्यलेश्या के पुद्गलों पर वर्ण का प्रभाव अधिक होता है। वे पुद्गल कर्म, द्रव्य-कषाय, द्रव्य-मन, द्रव्य-भाषा के पुद्गलों से स्थूल हैं। किन्तु औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, शब्द, रूप, रस, गन्ध, आदि से सूक्ष्म हैं। ये पुद्गल आत्मा के प्रयोग में आने वाले पुद्गल हैं अतः इन्हें प्रायोगिक पुद्गल कहते हैं। यह सत्य है कि ये पुद्गल आत्मा से नहीं बंधते हैं, किन्तु इनके अभाव में कर्म-बन्धन की प्रक्रिया भी नहीं होती।

आत्मा जिसके सहयोग से कर्म में लिप्त होती है, वह लेश्या है। लेश्या का व्यापक दृष्टि से अर्थ करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते हैं कि पुद्गल द्रव्य के संयोग से होने वाले जीव के परिणाम और जीव की विचार-शक्ति को प्रभावित करने वाले पुद्गल द्रव्य और संस्थान के हेतुभूत वर्ण और कान्ति। भगवती सूत्र में जीव और अजीव दोनों की आत्म-परिणति के लिए लेश्या शब्द व्यवहृत हुआ है। जैसे चूना और गोबर से दीवार का लेपन किया जाता है वैसे ही आत्मा पुण्य-पाप या शुभ और अशुभ कर्मों से लीपी जाती है अर्थात् जिसके द्वारा कर्म आत्मा में लिप्त हो जाते हैं वह लेश्या है।[5] दिगम्बर आचार्य वीरसेन के शब्दों में, 'आत्मा और कर्म का सम्बन्ध कराने वाली प्रवृत्ति लेश्या है।[6] मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद और योग के द्वारा कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से होता है क्या वे ही लेश्या हैं? पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में कषायों के उदय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहा है।[7] तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलंक ने भी उसी का अनुसरण किया है।[8]

सार यह है कि केवल कषाय और योग लेश्या नहीं है, किन्तु कषाय और योग दोनों ही उसके कारण हैं। इसलिए लेश्या का अन्तर्भाव न तो योग में किया जा सकता है न कषाय में। क्योंकि इन दोनों के संयोग से एक तीसरी अवस्था समुत्पन्न होती है, जैसे शरबत। कितने ही आचार्य मानते हैं कि लेश्या में कषाय की प्रधानता नहीं अपितु योग की प्रधानता होती है। क्योंकि केवली में कषाय का अभाव होता है, किन्तु योग की सत्ता रहती है, इसलिए उसमें शुक्ल लेश्या है।

षट्खण्डागम की धवला टीका में लेश्या के सम्बन्ध में निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प-बहुत्व प्रभृति अधिकारों के द्वारा लेश्या पर चिन्तन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है।[९] आगम सहित्य में अट्ठाइस लब्धियों का वर्णन है। उनमें एक तेजस्-लब्धि है। तेजो-लेश्या अजीव है। तेजो-लेश्या के पुद्गलों में जिस प्रकार लाल प्रभा और कान्ति होती है वैसी ही कान्ति तेजस्-लब्धि के प्रयोग करने वाले पुद्गलों में भी होती है। इसी दृष्टि से तेजस्-लब्धि के साथ लेश्या शब्द भी प्रयुक्त हुआ हो।

गणधर गौतम ने भगवान महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! बाण के जीवों को मार्ग में जाते समय कितनी क्रियाएँ लगती हैं? उसके हर एक अवयव की कितनी क्रियाएँ होती हैं? उत्तर में भगवान ने कहा—गौतम, चार-पाँच क्रियाएँ होती हैं। क्योंकि मार्ग में जाते समय मार्गवर्ती जीवों को वह सन्त्रस्त करता है। बाण के प्रहार से वे जीव अत्यन्त सिकुड़ जाते हैं। प्रस्तुत सन्तापकारक स्थिति में जीव को चार क्रियाएँ लगती हैं, यदि प्राणातिपात हो जाय तो पाँच क्रियाएँ लगती हैं।[१०] यही स्थिति तेजो-लेश्या की भी है। उसमें भी चार-पाँच क्रियाएँ लगती हैं। अष्टस्पर्शी पुद्गल-द्रव्य मार्गवर्ती जीवों को उद्वेग न करे, यह स्वाभाविक है। भगवती में स्कन्दक मुनि का **'अवहिर्लेश्य'** यह विशेषण है जिसका अर्थ है उनकी लेश्या यानि मनोवृत्ति संयम से बाहर नहीं है।[११] आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में श्रद्धा का उत्कर्ष प्रतिपादित करते हुए मनोयोग के अर्थ में लेश्या का प्रयोग हुआ है। शिष्य गुरु की दृष्टि का अनुगमन करे। उनकी लेश्या में विचरे अर्थात् उनके विचारों का अनुगमन करे।[१२] प्रज्ञापना, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि आगम साहित्य में लेश्या शब्द का प्रयोग वर्ण, प्रभा और रंग के अर्थ में भी हुआ है। प्रज्ञापना में देवों के दिव्य प्रभाव का वर्णन करते हुए द्युति, प्रभा, ज्योति, छाया, अर्चि और लेश्या शब्द का प्रयोग हुआ है।[13] इसी प्रकार नारकीय जीवों के अशुभ कर्मविपाकों के सम्बन्ध में गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—क्या सभी नारकीय जीव एक सदृश लेश्या और एक सदृश वर्ण वाले होते हैं या असमान? समाधान करते हुए महावीर ने कहा—सभी जीव समान लेश्या और समान वर्ण वाले नहीं होते। जो जीव पहले नरक में उत्पन्न हुए हैं वे पश्चात् उत्पन्न होने वाले जीवों की अपेक्षा विशुद्ध वर्ण वाले और लेश्या वाले होते हैं। इसका कारण नारकीय जीवों के अप्रशस्त वर्ण नामकर्म की प्रकृति, तीव्र अनुभाग वाली होती है जिसका विपाक भव-सापेक्ष्य है। जो जीव पहले उत्पन्न हुए हैं उन्होंने बहुत सारे विपाक को पा लिया है, स्वल्प अवशेष है। जो बाद में उत्पन्न हुए हैं उन्हें अधिक भोगना है। एतदर्थ पूर्वोत्पन्न विशुद्ध हैं और पश्चादुत्पन्न अविशुद्ध हैं। इसी तरह जिन्होंने अप्रशस्त लेश्या-द्रव्यों को अधिक मात्रा में भोगा है वे विशुद्ध हैं और जिनके अधिक शेष हैं वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं।[१४]

हम पूर्व लिख चुके हैं कि लेश्या के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्यलेश्या पुद्गल विशेषात्मक है। इसके स्वरूप के सम्बन्ध में मुख्य रूप से तीन मान्यताएँ प्राप्त हैं—कर्मवर्गणानिष्पन्न, कर्मनिस्यन्द और योगपरिणाम।

उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार शांतिसूरि का अभिमत है कि द्रव्य-लेश्या का निर्माण कर्मवर्गणा से होता है। यह द्रव्य-लेश्या कर्मरूप है तथापि वह आठ कर्मों से पृथक् है, जैसे कि कार्मण शरीर। यदि लेश्या को कर्मवर्गणा निष्पन्न न माना जाय तो वह कर्म-स्थिति-विधायक नहीं बन सकती। कर्म-लेश्या का सम्बन्ध नामकर्म के साथ है। उसका सम्बन्ध शरीर-रचना सम्बन्धी पुद्गलों से है। उसकी एक प्रकृति शरीर नामकर्म है। शरीर नामकर्म के पुद्गलों का एक समूह कर्म-लेश्या है।[१५]

दूसरी मान्यता की दृष्टि से लेश्या-द्रव्य कर्मनिस्यन्द रूप है। यहाँ पर निस्यन्द रूप का तात्पर्य बहते हुए कर्म-प्रवाह से है। चौदहवें गुणस्थान में कर्म की सत्ता है, प्रवाह है। किन्तु वहाँ पर लेश्या नहीं है। वहाँ पर नये कर्मों का आगमन नहीं होता।

कषाय और योग ये कर्म बन्धन के दो मुख्य कारण हैं। कषाय होने पर लेश्या में चारों प्रकार के बन्ध होते हैं। प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध का सम्बन्ध योग से है और स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध का सम्बन्ध कषाय से है। जब कषायजन्य बन्ध होता है तब लेश्याएँ कर्मस्थिति वाली होती हैं। केवल योग में स्थिति और अनुभाग नहीं होता, जैसे तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरिहन्तों के ईर्यापथिक क्रिया होती है, किन्तु स्थिति, काल और अनुभाग नहीं होता। जो दो समय का काल बताया गया है वह काल वस्तुतः ग्रहण करने का और उत्सर्ग का काल है। वह स्थिति और अनुभाग का काल नहीं है।

तृतीय अभिमतानुसार लेश्या-द्रव्य योगवर्गणा के अन्तर्गत स्वतन्त्र द्रव्य है। बिना योग के लेश्या नहीं होती। लेश्या और योग में परस्पर अन्वय और व्यतिरेक सम्बन्ध है। लेश्या के योग निमित्त में दो विकल्प समुत्पन्न होते हैं। क्या लेश्या को योगान्तर्गत द्रव्यरूप मानना चाहिए? अथवा योगनिमित्त कर्मद्रव्य रूप? यदि वह लेश्या द्रव्यकर्म रूप है तो घातीकर्म द्रव्यरूप है या अघाती कर्म द्रव्यरूप है? लेश्या घातीकर्म द्रव्यरूप नहीं है। क्योंकि घातीकर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नष्ट हो जाने पर भी लेश्या होती है। यदि लेश्या को अघातीकर्म द्रव्यस्वरूप माने तो अघाती कर्मोंवालों में भी सर्वत्र लेश्या नहीं है। चौदहवें गुणस्थान में अघातीकर्म है, किन्तु वहाँ लेश्या का अभाव है। इसलिए योग द्रव्य के अन्तर्गत ही द्रव्य स्वरूप लेश्या मानना चाहिए।

लेश्या से कषायों की वृद्धि होती है; क्योंकि योगद्रव्यों में कषाय बढ़ाने का सामर्थ्य है। प्रज्ञापना की टीका में आचार्य ने लिखा है—कर्मों के द्रव्य, विपाक होने वाले और उदय में आने वाले दोनों प्रयत्नों से प्रभावित होते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अपना कर्तृत्व दिखाते हैं। जिसे पित्त-विकार हो उसका क्रोध बढ़ जाता है। ब्राह्मी का सेवन ज्ञानावरण को कम करने में सहायक है। मदिरापान से ज्ञानावरण का उदय होता है। दही के सेवन से निद्रा की अभिवृद्धि होती है। निद्रा जो दर्शनावरण का औदयिक फल है। अतः स्पष्ट है कषायोदय में अनुरंजित योग प्रवृत्ति ही (लेश्या) स्थितिपाक में सहायक होती है।[१६]

गोम्मटसार में आचार्य नेमिचन्द्र ने योग-परिणामस्वरूप लेश्या का वर्णन किया है।[१७] आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में[१८] और गोम्मटसार के कर्मकाण्ड खण्ड में[१९] कषायोदय अनुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहा है। प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार दसवें गुणस्थान तक ही लेश्या हो सकती है। प्रस्तुत परिभाषा अपेक्षाकृत होने से पूर्व की परिभाषा से विरुद्ध नहीं है। अब हम संक्षेप में तीनों परिभाषाओं के सम्बन्ध में चिन्तन करेंगे।

प्रथम कर्मवर्गणानिष्पन्न लेश्या को मानने वाली एक परम्परा थी, किन्तु उस पर विस्तार के साथ लिखा हुआ साहित्य उपलब्ध नहीं है।

द्वितीय कर्मनिस्यन्द लेश्या मानने वाले आचार्यों ने योग-परिणाम लेश्या को स्वीकार नहीं किया है। उनका मन्तव्य है कि लेश्या योग-परिणाम नहीं हो सकती। क्योंकि कर्मबन्ध के दो कारणों में से योग के द्वारा प्रकृति और प्रदेश का ही बन्ध हो सकता है, स्थिति और अनुभाग का बन्ध नहीं हो सकता। जबकि आगम साहित्य में स्थिति का लेश्याकाल प्रतिपादित किया गया है, वह इस परिभाषा को मानने से घट नहीं सकेगा। अतः कर्मनिस्यन्द लेश्या मानना ही तर्कसंगत है।[२०] जहाँ पर लेश्या के स्थितिकाल का बन्धन होता है वहाँ पर चारों का बन्ध होगा। जहाँ पर कषाय का अभाव है वहाँ पर योग के द्वारा दो का ही बन्धन होगा। उपशान्तमोह और क्षीणमोह आत्माओं में कर्म-प्रवाह प्रारम्भ है, वहाँ पर लेश्या भी है, तथापि स्थिति का बन्ध नहीं होता है। प्रश्न है—समुच्छिन्न शुक्लध्यान को ध्याते हुए चौदहवें गुणस्थान में चार कर्म विद्यमान हैं तथापि वहाँ पर लेश्या नहीं है। उत्तर है—जो आत्माएँ कर्म युक्त हैं उन सभी के कर्म-प्रवाह चालू ही रहें, ऐसा नियम नहीं है। यदि इस प्रकार माना जायेगा तो योग परिणाम लेश्या का अर्थ होगा योग ही लेश्या है; किन्तु इस प्रकार नहीं है। उदाहरण के रूप में सूर्य के बिना किरणें नहीं होतीं; किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि किरणें ही सूर्य हैं। तात्पर्य यह है बहता हुआ जो कर्म-प्रवाह है वही लेश्या का उपादान कारण है।[२१]

तृतीय योग-परिणाम लेश्या कर्मनिस्यन्द स्वभाव युक्त नहीं है। यदि इस प्रकार माना जायगा तो ईर्यापथिक मार्ग स्थिति-बन्ध बिना कारण का होगा। आगम साहित्य में दो समय स्थिति वाले अन्तर्मुहूर्त काल को भी निर्धारित काल माना है। अतः स्थितिबन्ध का कारण कषाय नहीं अपितु लेश्या है। जहाँ पर कषाय रहता है वहाँ पर तीव्र बन्धन होता है। स्थितिबन्ध की परिपक्वता कषाय से होती है। अतः कर्म-प्रवाह को लेश्या मानना तर्कसंगत नहीं है।

कर्मों के कर्म-सार और कर्म-असार ये दो रूप हैं। प्रश्न है—कर्मों के असारभाव को निस्यन्द मानते हैं तो असार कर्म प्रकृति से लेश्या के उत्कृष्ट अनुभागबन्ध का कारण किस प्रकार होगा? और यदि कर्मों के सार-भाव को निस्यन्द कहेंगे तो आठ कर्मों में से किस कर्म के सार-भाव को कहें? यदि आठों ही कर्मों का माना जाय तो जहाँ पर कर्मों के विपाक का वर्णन है वहाँ पर किसी भी कर्म का लेश्या के रूप में विपाक का प्रतिपादन नहीं हुआ है। एतदर्थ योग-परिणाम को ही लेश्या मानना चाहिए।[२२] उपाध्याय विनयविजयजी ने लोक-प्रकाश में इस तथ्य को स्वीकार किया है।[२३]

भावलेश्या आत्मा का परिणामविशेष है, जो संक्लेश और योग से अनुगत है। संक्लेश के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट; तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम; मन्द, मन्दतर, मन्दतम आदि विविध भेद होने से भाव-लेश्या के अनेक प्रकार हैं, तथापि संक्षेप में उसे छह भागों में विभक्त किया है। अर्थात्, मन के परिणाम शुद्ध और अशुद्ध दोनों ही प्रकार के होते हैं और उनके निमित्त भी शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के होते हैं। निमित्त अपना प्रभाव दिखाता है जिससे मन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम उनसे प्रभावित होते हैं। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध है। निमित्त को द्रव्यलेश्या और मन के परिणाम को भावलेश्या कहा है। जो पुद्गल निमित्त बनते हैं उनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श सभी होते हैं तथापि उनका नामकरण वर्ण के आधार पर किया गया है। संभव है गंध, रस और स्पर्श की अपेक्षा वर्ण मानव को अधिक प्रभावित करता हो। कृष्ण, नील और कापोत ये तीन रंग अशुद्ध हैं और इन रंगों से प्रभावित होने वाली लेश्याएँ भी अशुभ मानी गयी हैं और उन्हें अधर्म-लेश्याएँ कहा गया है।[२४] तेजस्, पद्म और शुक्ल ये तीन वर्ण शुभ हैं और उनसे प्रभावित होने वाली लेश्याएँ भी शुभ हैं। इसलिए तीन लेश्याओं को धर्म-लेश्या कहा हैं।[२५]

अशुद्धि और शुद्धि की दृष्टि से छह लेश्याओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

(१) कृष्णलेश्या	अशुद्धतम	क्लिष्टतम
(२) नीललेश्या	अशुद्धतर	क्लिष्टतर
(३) कापोतलेश्या	अशुद्ध	क्लिष्ट
(४) तेजस्लेश्या	शुद्ध	अक्लिष्ट
(५) पद्मलेश्या	शुद्धतर	अक्लिष्टतर
(६) शुक्ललेश्या	शुद्धतम	अक्लिष्टतम

प्रस्तुत अशुद्धि और शुद्धि का आधार केवल निमित्त ही नहीं अपितु निमित्त और उपादान दोनों हैं। अशुद्धि का उपादान कषाय की तीव्रता है और उसके निमित्त कृष्ण, नील, कापोत रंगवाले पुद्गल हैं और शुद्धि का उपादान कषाय की मन्दता है और उसके निमित्त रक्त, पीत और श्वेत रंगवाले पुद्गल हैं। उत्तराध्ययन में लेश्या का नाम, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु इन ग्यारह प्रकार से लेश्या पर चिन्तन किया है।[२६]

आचार्य अकलंक ने तत्त्वार्थराजवार्तिक[२७] में लेश्या पर (१) निर्देश, (२) वर्ण, (३) परिणाम, (४) संक्रम, (५) कर्म, (६) लक्षण, (७) गति, (८) स्वामित्व, (९) साधना, (१०) संख्या, (११) क्षेत्र (१२), स्पर्शन (१३), काल, (१४) अन्तर, (१५) भाव, (१६) अल्प-बहुत्व इन सोलह प्रकारों से चिन्तन किया है।

जितने भी स्थूल परमाणु स्कन्ध हैं वे सभी प्रकार के रंगों और उपरंगों वाले होते हैं। मानव का शरीर स्थूल स्कन्ध वाला है। अतः उसमें सभी रंग हैं। रंग होने से वह बाह्य रंगों से प्रभावित होता है और उसका प्रभाव मानव के मानस पर भी पड़ता है। एतदर्थ ही भगवान महावीर ने सभी प्राणियों के प्रभाव व शक्ति की दृष्टि से शरीर और विचारों को छह भागों में विभक्त किया है और वही लेश्या है।

डा० हर्मन जेकोबी ने लिखा है—जैनों के लेश्या के सिद्धान्त में तथा गोशालक के मानवों को छह विभागों में विभक्त करने वाले सिद्धान्त में समानता है। इस बात को सर्वप्रथम प्रोफेसर ल्यूमेन ने पकड़ा पर इस सम्बन्ध में मेरा विश्वास है जैनों ने यह सिद्धान्त आजीविकों से लिया और उसे परिवर्तित कर अपने सिद्धान्तों के साथ समन्वित कर दिया।[२८]

प्रो० ल्यूमेन तथा डा० हर्मन जेकोबी ने मानवों का छः प्रकार का विभाजन गोशालक द्वारा माना है, पर अंगुत्तरनिकाय से स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत विभाजन गोशालक द्वारा नहीं अपितु पूरणकश्यप के द्वारा किया गया था।[२९] दीघनिकाय में छह तीर्थंकरों का उल्लेख है, उनमें पूरणकश्यप भी एक हैं[३०] जिन्होंने रंगों के आधार पर छह अभिजातियाँ निश्चित की थीं। वे इस प्रकार हैं—

(१) कृष्णाभिजाति—क्रूर, कर्म करनेवाले सौकरिक, शाकुनिक प्रभृति जीवों का समूह।

(२) नीलाभिजाति—बौद्ध श्रमण और कुछ अन्य कर्मवादी, क्रियावादी भिक्षुओं का समूह।

(३) लोहिताभिजाति—एक शाटक निर्ग्रन्थों का समूह।

(४) हरिद्राभिजाति—श्वेत वस्त्रधारी या निर्वस्त्र।

(५) शुक्लाभिजाति—आजीवक श्रमण-श्रमणियों का समूह।

(६) परम शुक्लाभिजाति—आजीवक आचार्य, नन्द, वत्स, कृष, सांकृत्य, मस्करी गोशालक प्रभृति का समूह।[३१]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द की जिज्ञासा पर तथागत बुद्ध ने कहा—ये छह अभिजातियाँ अव्यक्त व्यक्ति द्वारा किया हुआ प्रतिपादन है। प्रस्तुत वर्गीकरण का मूल आधार अचेलता है। वस्त्र कम करना और वस्त्रों का पूर्ण त्याग कर देना अभिजातियों की श्रेष्ठता व ज्येष्ठता का कारण है।

अपने प्रधान शिष्य आनन्द से तथागत बुद्ध ने कहा—मैं भी छः अभिजातियों का प्रतिपादन करता हूँ।
(१) कोई व्यक्ति कृष्णाभिजातिक (नीच कुल में पैदा हुआ) हो और कृष्ण धर्म (पापकृत्य) करता है।
(२) कोई व्यक्ति कृष्णाभिजातिक हो और शुक्लधर्म करता है।
(३) कोई व्यक्ति कृष्णाभिजातिक हो अकृष्ण—अशुक्ल निर्वाण को समुत्पन्न करता है।
(४) कोई व्यक्ति शुक्लाभिजातिक (उच्च कुल में समुत्पन्न हुआ) हो तथा शुक्लधर्म (पुण्य) करता है।
(५) कोई व्यक्ति शुक्लाभिजातिक हो और कृष्ण कर्म करता है।
(६) कोई व्यक्ति शुक्लाभिजातिक हो अशुक्ल-अकृष्ण निर्वाण को समुत्पन्न करता है।[32]

प्रस्तुत वर्गीकरण जन्म और कर्म के आधार पर किया गया है। इस वर्गीकरण में चाण्डाल, निषाद आदि जातियों को शुक्ल कहा है। कायिक, वाचिक और मानसिक जो दुश्चरण हैं वे कृष्णधर्म हैं और उनका जो श्रेष्ठ आचरण है वह शुक्लधर्म है। पर निर्वाण न कृष्ण है, न शुक्ल है। इस वर्गीकरण का उद्देश्य है नीच जाति में समुत्पन्न व्यक्ति भी शुक्लधर्म कर सकता है और उच्चकुल में उत्पन्न व्यक्ति भी कृष्णधर्म करता है। धर्म और निर्वाण का सम्बन्ध जाति से नहीं है।

प्रस्तुत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पूरणकश्यप और तथागत बुद्ध ने छः अभिजातियों का जो वर्गीकरण किया है उसका सम्बन्ध लेश्या के साथ नहीं है। लेश्याओं का जो सम्बन्ध है वह एक-एक व्यक्ति से है। विचारों को प्रभावित करने वाली लेश्याएँ एक व्यक्ति के जीवन में समय के अनुसार छह भी हो सकती हैं।

छह अभिजातियों की अपेक्षा लेश्या का जो वर्गीकरण है वह वर्गीकरण महाभारत से अधिक मिलता-जुलता है। एक बार सनत्कुमार ने दानवों के अधिपति वृत्रासुर से कहा—प्राणियों के छह प्रकार के वर्ण हैं—(१) कृष्ण, (२) धूम्र, (३) नील, (४) रक्त, (५) हारिद्र और (६) शुक्ल। कृष्ण, धूम्र और नील वर्ण का सुख मध्यम होता है। रक्त वर्ण अधिक सहन करने योग्य होता है। हारिद्र वर्ण सुखकर होता है और शुक्ल वर्ण उससे भी अधिक सुखकर होता है।[33]

महाभारत में कहा है—कृष्ण वर्ण वाले की गति नीच होती है। जिन निकृष्ट कर्मों से जीव नरक में जाता है वह उन कर्मों में सतत आसक्त रहता है। जो जीव नरक से निकलते हैं उनका वर्ण धूम्र होता है जो रंग पशु-पक्षी जाति का है। मानव जाति का रंग नीला है। देवों का रंग रक्त है—वे दूसरों पर अनुग्रह करते हैं। जो विशिष्ट देव होते हैं उनका रंग हारिद्र है। जो महान् साधक हैं उनका वर्ण शुक्ल है।[34] अन्यत्र महाभारत में यह भी लिखा है कि दुष्कर्म करने वाला मानव वर्ण से परिभ्रष्ट हो जाता है और पुण्य कर्म करने वाला मानव वर्ण के उत्कर्ष को प्राप्त करता है।[35]

तुलनात्मक दृष्टि से हम चिन्तन करें तो सहज ही परिज्ञात होता है कि जैन दृष्टि का लेश्या-निरूपण और महाभारत का वर्ण-विश्लेषण—ये दोनों बहुत कुछ समानता को लिये हुए हैं। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि जैनदर्शन ने यह वर्णन महाभारत से लिया हो। क्योंकि अन्य दर्शनों ने भी रंग के प्रभाव की चर्चा की है। पर जैनाचार्यों ने इस सम्बन्ध में जितना गहरा चिन्तन किया है उतना अन्य दर्शनों ने नहीं किया। उन्होंने तो केवल इसका वर्णन प्रासंगिक रूप से ही किया है। अतः डा० हर्मन जेकोबी का यह मानना कि लेश्या का वर्णन जैनियों ने अन्य परम्पराओं से लिया है, तर्कसंगत नहीं है।

कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीकृष्ण ने गति के कृष्ण और शुक्ल ये दो विभाग किये। कृष्ण गतिवाला पुनः-पुनः जन्म-मरण ग्रहण करता है, शुक्ल गतिवाला जन्म और मरण से मुक्त हो जाता है।[36]

धम्मपद[37] में धर्म के दो विभाग किये हैं—कृष्ण और शुक्ल। पण्डित मानव को कृष्णधर्म का परित्याग कर शुक्लधर्म का पालन करना चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने कर्म की दृष्टि से चार जातियाँ प्रतिपादित की हैं—(१) कृष्ण (२) शुक्ल-कृष्ण (३) शुक्ल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) अशुक्ल-अकृष्ण, जो क्रमशः अशुद्धतर, अशुद्ध, शुद्ध और शुद्धतर हैं। तीन कर्मजातियाँ सभी जीवों में होती हैं, किन्तु चौथी अशुक्ल-अकृष्ण जाति योगी में होती है।[३८] प्रस्तुत सूत्र पर भाष्य करते हुए लिखा है कि उनका कर्म कृष्ण होता है जिनका चित्त दोष-कुलषित या क्रूर है। पीड़ा और अनुग्रह दोनों विधाओं से मिश्रित कर्म शुक्ल-कृष्ण कहलाता हैं। यह बाह्य साधनों से साध्य होते हैं। तप, स्वाध्याय और ध्यान में निरत व्यक्तियों के कर्म केवल मन के अधीन होते हैं उनमें बाह्य साधनों की किसी भी प्रकार की अपेक्षा नहीं होती और न किसी को पीड़ा दी जाती है, एतदर्थ यह कर्म शुक्ल कहा जाता है। जो पुण्य के फल की भी आकांक्षा नहीं करते उन क्षीण-क्लेश चरमदेह योगियों के अशुक्ल-अकृष्ण कर्म होता है।

प्रकृति का विश्लेषण करते हुए उसे श्वेताश्वतर उपनिषद् में लोहित्, शुक्ल और कृष्ण रंग का बताया गया है।[३९] सांख्य कौमुदी में कहा गया है जब रजोगुण के द्वारा मन मोह से रंग जाता है तब वह लोहित है, सत्त्वगुण से मन का मैल मिट जाता है, अतः वह शुक्ल है।[४०] शिव स्वरोदय में लिखा है—विभिन्न प्रकार के तत्वों के विभिन्न वर्ण होते हैं जिन वर्णों से प्राणी प्रभावित होता है।[४१] वे मानते हैं कि मूल में प्राणतत्त्व एक है। अणुओं की कमी-बेशी, कंपन या वेग से उसके पाँच विभाग किये गये हैं जैसे देखिए—

नाम	वेग	रंग	आकार	रस या स्वाद
(१) पृथ्वी	अल्पतर	पीला	चतुष्कोण	मधुर
(२) जल	अल्प	सफेद या बैंगनी	अर्द्धचन्द्राकार	कसैला
(३) तेजस्	तीव्र	लाल	त्रिकोण	चरपरा
(४) वायु	तीव्रतर	नीला या आसमानी	गोल	खट्टा
(५) आकाश	तीव्रतम	काला या नीलाभ (सर्ववर्णक मिश्रित रंग)	अनेक बिन्दु गोल या आकार शून्य	कड़वा

जैनाचार्यों ने लेश्या पर गहरा चिन्तन किया है। उन्होंने वर्ण के साथ आत्मा के भावों का भी समन्वय किया है। द्रव्यलेश्या पौद्गलिक है। अतः आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से भी लेश्या पर चिन्तन किया जा सकता है।

लेश्या : मनोविज्ञान और पदार्थविज्ञान

मानव का शरीर, इन्द्रियाँ और मन ये सभी पुद्गल से निर्मित हैं। पुद्गल में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श होने से वह रूपी है। जैन साहित्य में वर्ण के पाँच प्रकार बताये हैं— काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से सफेद रंग मौलिक नहीं है। वह सात रंगों के मिलने पर बनता है। उन्होंने रंगों के सात प्रकार बताये हैं। यह सत्य है कि रंगों का प्राणी जीवन के साथ बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों ने भी परीक्षण कर यह सिद्ध किया है कि रंगों का प्रकृति पर, शरीर पर और मन पर प्रभाव पड़ता है। जैसे लाल, नारंगी, गुलाबी, बादामी रंगों से मानव की प्रकृति में ऊष्मा बढ़ती है। पीले रंग से भी ऊष्मा बढ़ती है, किन्तु पूर्वापेक्षया कम। नीले, आसमानी रंग से प्रकृति में शीतलता का संचार होता है। हरे रंग से न अधिक ऊष्मा बढ़ती है और न अधिक शीतलता का ही संचार होता है, अपितु शीतोष्ण सम रहता है। सफेद रंग से प्रकृति सदा सम रहती है।

रंगों का शरीर पर भी अद्भुत प्रभाव पड़ता है। लाल रंग से स्नायु मंडल में स्फूर्ति का संचार होता है। नीले रंग से स्नायविक दुर्बलता नष्ट होती है, धातुक्षय सम्बन्धी रोग मिट जाते हैं तथा हृदय और मस्तिष्क में शक्ति की अभिवृद्धि होती है। पीले रंग से मस्तिष्क की दुर्बलता नष्ट होकर उसमें शक्ति-संचार होता है, कब्ज, यकृत, प्लीहा के रोग मिट जाते हैं। हरे रंग से ज्ञान-तन्तु व स्नायु मंडल सुदृढ़ होते हैं तथा धातु क्षय सम्बन्धी रोग नष्ट हो जाते हैं। गहरे नीले रंग से आमाशय सम्बन्धी रोग मिटते हैं। सफेद रंग से नींद गहरी आती है। नारंगी रंग से वायु सम्बन्धी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और दमा की व्याधि भी शान्त हो जाती है। बैंगनी रंग से शरीर का तापमान कम हो जाता है।

प्रकृति और शरीर पर ही नहीं, किन्तु मन पर भी रंगों का प्रभाव पड़ता है। जैसे, काले रंग से मन में असंयम, हिंसा एवं क्रूरता के विचार लहराने लगेंगे। नीले रंग से मन में ईर्ष्या, असहिष्णुता, रस-लोलुपता एवं विषयों के प्रति आसक्ति व आकर्षण उत्पन्न होता हैं। कापोत रंग से मन में वक्रता, कुटिलता अंगड़ाइयाँ लेने लगती हैं। अरुण रंग से मन में ऋजुता, विनम्रता एवं धर्म-प्रेम की पवित्र भावनाएँ पैदा होती हैं। पीले रंग से मन में क्रोध-मान-माया-लोभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि कषाय नष्ट होते हैं और साधक के मन में इन्द्रिय विजय के भाव तरंगित होते हैं। सफेद रंग से मन में अपूर्व शान्ति तथा जितेन्द्रियता के निर्मल भावों का संचार होता है।

अन्य दृष्टि से भी रंगों का मानसिक विचारों पर जो प्रभाव होता है उसका वर्गीकरण चिन्तकों ने अन्य रूप से प्रस्तुत किया है, यद्यपि द्वितीय वर्गीकरण प्रथम वर्गीकरण से कुछ पृथक्ता लिए हुए है। जैसे, आसमानी रंग से भक्ति सम्बन्धी भावनाएँ जाग्रत होती हैं। लाल रंग से काम वासनाएँ उद्‌बुद्ध होती हैं। पीले रंग से तार्किक शक्ति की अभिवृद्धि होती है। गुलाबी रंग से प्रेम विषयक भावनाएँ जाग्रत होती हैं। हरे रंग से मन में स्वार्थ की भावनाएँ पनपती हैं। लाल व काले रंग का मिश्रण होने पर मन में क्रोध भड़कता है।

जब हम इन दोनों प्रकार के रंगों के वर्गीकरण पर तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करते हैं तो ऐसा ज्ञात होता है कि प्रत्येक रंग प्रशस्त और अप्रशस्त दो प्रकार का है। कहीं पर लाल, पीले और सफेद रंग अच्छे विचारों को उत्पन्न नहीं करते इसलिए वे अप्रशस्त व अशुभ हैं, और कहीं पर वे अच्छे विचारों को उत्पन्न करते हैं, अतः वे प्रशस्त व शुभ हैं। क्रोध से अग्नि तत्त्व प्रदीप्त हो जाता है, उसका वर्ण लाल माना गया है। मोह से जलतत्त्व की अभिवृद्धि हो जाती है, उसका वर्ण सफेद या बैंगनी माना गया है। भय से पृथ्वी-तत्त्व प्रधान हो जाता है, इसका वर्ण पीला है। लेश्याओं के वर्णन में भी क्रोध, मोह और भय आदि अन्तर् में रहे हुए हैं और उनका मानस पर असर होता है। कहीं पर श्याम रंग को भी प्रशस्त माना है, जैसे—नमस्कार महामन्त्र के पदों के साथ जो रंगों की कल्पना की गयी है उसमें 'नमो लोए सव्वसाहूणं' का वर्ण कृष्ण बताया है। साधु के साथ जो कृष्ण वर्ण की योजना की गयी है वह कृष्णलेश्या जो निकृष्टतम चित्तवृत्ति को समुत्पन्न करने का हेतु अप्रशस्त कृष्ण वर्ण है उससे पृथक् है, कृष्णलेश्या का जो कृष्णवर्ण है उससे साधु का जो कृष्ण वर्ण है वह भिन्न है और प्रशस्त है।

पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक रंग के सम्बन्ध में गम्भीर अध्ययन कर रहे हैं। कलर थिरेपी रंग के आधार पर समुत्पन्न हुई है। रंग से मानव के चित्त व शरीर की भी चिकित्सा प्रारंभ हुई है जिसके परिणाम भी बहुत ही श्रेष्ठ आये हैं।[३७]

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से विद्युत् चुम्बकीय तरंगें बहुत ही सूक्ष्म हैं। वे विराट् विश्व में गति कर रही हैं। वैज्ञानिकों ने विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम का सामान्य रूप से विभाजन इस प्रकार से किया है:—

रेडियो तरंगें	सूक्ष्म तरंगें	अवरक्त	दृश्यमान	परा बैंगनी	एक्स-रे गामा किरणें

$१०^{६}$ $१०^{२}$ १ $१०^{-२}$ $१०^{-४}$ $१०^{-६}$ $१०^{-१०}$ तरंग दैर्घ्य

प्रस्तुत चार्ट से यह स्पष्ट होता है कि विश्व में जितनी भी विकिरणें हैं उन विकिरणों की तुलना में जो दिखाई देती हैं उन विकिरणों का स्थान नहीं-जैसा है। पर उन विकिरणों का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है जो विकिरणें दृष्टिगोचर होती हैं। त्रिपार्श्व के माध्यम से उनके सात वर्ण देख सकते हैं। जैसे बैंगनी, नील, आकाश-सदृश नील, हरा, पीला, नारंगी और लाल। इन विकिरणों में एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि क्रमशः इन रंगों में आवृत्ति (Frequency) कम होती है, और तरंग-दैर्घ्य (wave length) में अभिवृद्धि होती है। बैंगनी रंग के पीछे की विकिरणों को अपरा बैंगनी (ultra-violet) और लाल रंग के आगे की विकिरणें अवरक्त कही जाती हैं। प्रस्तुत वर्गीकरण में वर्ण की मुख्यता है। किन्तु जितनी भी विकिरणें हैं उनका लक्षण, आवृत्ति और तरंगदैर्घ्य है।

विज्ञान के आलोक में जब हम लेश्या पर चिन्तन करते हैं तो सूर्य के प्रकाश की भाँति यह स्पष्ट होता है कि छह लेश्याओं के वर्ण और दृष्टिगोचर होने वाले स्पेक्ट्रम (वर्ण-पट) के रंगों की तुलना इस प्रकार की जा सकती है—

दिखायी दिया जाने वाला स्पेक्ट्रम	लेश्या
१ अपरा बैंगनी से बैंगनी तक	कृष्णलेश्या
२ नील	नीललेश्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ आकाश सदृश नील	कापोतलेश्या
४ पीला	तेजोलेश्या
५ लाल	पद्मलेश्या
६ अवरक्त तथा आगे की विकिरणें	शुक्ललेश्या

डा० महावीरराज गेलडा ने "लेश्याः एक विवेचन' शीर्षक लेख में जो चार्ट दिया है उसमें उन्होंने सप्त वर्ण के स्थान पर पाँच ही वर्ण लिये हैं और हरा व नारंगी ये दो वर्ण छोड़ दिये हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में तेजोलेश्या का रंग हिंगुल की तरह रक्त लिखा है और पद्मलेश्या का रंग हरिताल की तरह पीत लिखा है। किन्तु डा० गेलडा ने तेजोलेश्या की पीले वर्ण वाली और पद्म लेश्या को लाल वर्ण वाली मानी है वह आगम की दृष्टि से उचित नहीं है। लाल के बाद आगमकार ने पीत का उल्लेख क्यों किया है इस सम्बन्ध में हम आगे की पंक्तियों में विचार करेंगे।

तीन जो प्रारम्भिक विकिरणें हैं, वे लघुतरंग वाली और पुनः-पुनः आवृत्ति वाली होती हैं। इसी तरह कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएँ तीव्र कर्म बन्धन में सहयोगी व प्राणी को भौतिक पदार्थों में लिप्त रखती हैं। ये लेश्याएँ आत्मा के प्रतिकूल हैं, अतः इन्हें आगम साहित्य में अशुभ व अधर्म लेश्याएँ कहा गया है और इनसे तीव्र कर्म बन्धन होता है।

उसके पश्चात् की विकिरणों की तरंगें अधिक लम्बी होती हैं और उनमें आवृत्ति कम होती है। इसी तरह तेजो, पद्म व शुक्ल लेश्याएँ तीव्र कर्म बन्धन नहीं करतीं। इनमें विचार, शुभ और शुभतर होते चले जाते हैं। इन तीन लेश्या वाले जीवों में क्रमशः अधिक निर्मलता आती है। इसलिए ये तीन लेश्याएँ शुभ हैं और इन्हें धर्म लेश्याएँ कहा है।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने जो विकिरणों के साथ तुलना की है वह स्थूल रूप से ही है। तथापि इतना स्पष्ट है कि लेश्या के लक्षणों में वर्ण की प्रधानता है। विकिरणों में आवृत्ति और तरंग की लम्बाई होती है। विचारों में जितना अधिक संकल्प-विकल्प के द्वारा आवर्त होंगे वे उतने ही अधिक आत्मा के लिए अहितकर होंगे। एतदर्थ ध्यान और जपयोग व साधना के द्वारा विचारों को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है।

हम पूर्व ही बता चुके हैं कि लेश्याओं का विभाजन रंग के आधार पर किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे के आसपास एक प्रभामण्डल विनिर्मित होता है जिसे 'ओरा' कहते हैं। वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के कैमरे निर्माण किये हैं जिसमें प्रभामण्डल के चित्र भी लिये जा सकते हैं। प्रभामंडल के चित्र से उस व्यक्ति के अन्तर्मानस में चल रहे विचारों का सहज पता लग सकता है। यदि किसी व्यक्ति के आस-पास कृष्ण आभा है फिर भले ही वह व्यक्ति लच्छेदार भाषा में धार्मिक दार्शनिक चर्चा करे तथापि काले रंग की वह प्रभा उसके चित्त की कालिमा की स्पष्ट सूचना देती है। भगवान महावीर, तथागत बुद्ध, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, कर्मयोगी श्रीकृष्ण, प्रेम मूर्ति क्राइस्ट आदि विश्व के जितने भी विशिष्ट महापुरुष हैं उनके चेहरों के आस-पास चित्रों में प्रभामण्डल बनाये हुए दिखायी देते हैं जो उनकी शुभ्र आभा को प्रकट करते है। उनके हृदय की निर्मलता और अगाध स्नेह को प्रकट करते हैं। जिन व्यक्तियों के आस-पास काला प्रभामंडल है उनके अन्तर्मानस में भयंकर दुर्गुणों का साम्राज्य होता है। क्रोध की आंधी से उनका मानस सदा विक्षुब्ध रहता है, मान के सर्प फूत्कारें मारते रहते हैं, माया और लोभ के बवण्डर उठते रहते हैं।[४४] वह स्वयं कष्ट सहन करके भी दूसरे व्यक्तियों को दुःखी बनाना चाहता है। वैदिक साहित्य में मृत्यु के साक्षात् देवता यम का रंग काला है। क्योंकि यम सदा यही चिन्तन करता रहता है कब कोई मरे और मैं उसे ले जाऊँ। कृष्ण वर्ण पर अन्य किसी भी रंग का प्रभाव नहीं होता। वैसे ही कृष्णलेश्या वाले जीवों पर भी किसी भी महापुरुष के वचनों का प्रभाव नहीं पड़ता। सूर्य की चमचमाती किरणें जब काले वस्त्र पर गिरती हैं तो कोई भी किरण पुनः नहीं लौटती। काले वस्त्र में सभी किरणें डूब जाती हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक दुर्गुणों का भण्डार होगा उसका प्रभामंडल उतना ही अधिक काला होगा। यह काला प्रभामंडल कृष्णलेश्या का स्पष्ट प्रतीक है।

द्वितीय लेश्या का नाम नीललेश्या है। वह कृष्णलेश्या से श्रेष्ठ है। उसमें कालापन कुछ हलका हो जाता है। नीललेश्या वाला व्यक्ति स्वार्थी होता है। उसमें ईर्ष्या, कदाग्रह, अविद्या, निर्लज्जता, प्रद्वेष, प्रमाद, रसलोलुपता, प्रकृति की क्षुद्रता और बिना विचारे कार्य करने की प्रवृत्ति होती है।[४५] आधुनिक भाषा में हम उसे सेल्फिश कह सकते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। यदि उसे किसी कार्य में लाभ होता हो तो वह अन्य व्यक्ति को हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करता। किन्तु कृष्ण-लेश्या की अपेक्षा उसके विचार कुछ प्रशस्त होते हैं।

तीसरी लेश्या का नाम कापोत है जो अलसी पुष्प की तरह मटमैला अथवा कबूतर के कण्ठ के रंगवाला होता है। कापोतलेश्या में नीला रंग फीका हो जाता है। कापोतलेश्या वाले व्यक्ति की वाणी व आचरण में वक्रता होती है। वह अपने दुर्गुणों को छिपाकर सद्गुणों को प्रकट करता है।[४६] नीललेश्या से उसके भाव कुछ अधिक विशुद्ध होते हैं। एतदर्थ ही अधर्मलेश्या होने पर भी वह धर्मलेश्या के सन्निकट है।

चतुर्थ लेश्या का रंग शास्त्रकारों ने लाल प्रतिपादित किया है। लाल रंग साम्यवादियों की दृष्टि से क्रांति का प्रतीक है। तीन अधर्मलेश्याओं से निकलकर जब वह धर्मलेश्या में प्रविष्ट होता है तब यह एक प्रकार से क्रांति ही है अतः इसे धर्मलेश्या में प्रथम स्थान दिया गया है।

वैदिक परम्परा में संन्यासियों को गैरिक अर्थात् लाल रंग के वस्त्र धारण करने का विधान है। हमारी दृष्टि से उन्होंने जो यह रंग चुना है वह जीवन में क्रांति करने की दृष्टि से ही चुना होगा। जब साधक के अन्तर्मानस में क्रांति की भावना उद्‌बुद्ध होती है तो उसके शरीर का प्रभामंडल लाल होता है। और वस्त्र भी लाल होने से वे आभा-मंडल के साथ यह मिल जाते हैं। जब जीवन में लाल रंग प्रगट होता है तब उसके स्वार्थ का रंग नष्ट हो जाता है। तेजोलेश्या वाले व्यक्ति का स्वभाव नम्र व अचपल होता है। वह जितेन्द्रिय, तपस्वी, पापभीरु और मुक्ति की अन्वेषणा करने वाला होता है।[४७] संन्यासी का अर्थ भी यही है। उसमें महत्त्वाकांक्षा नहीं होती। उसके जीवन का रंग उषाकाल के सूर्य की तरह होता है। उसके चेहरे पर साधना की लाली हो और सूर्य के उदय को तरह उसमें ताजगी हो।

पंचम लेश्या का नाम पद्म है। लाल के बाद पद्म अर्थात् पीले रंग का वर्णन है। प्रातःकाल का सूर्य ज्यों-ज्यों ऊपर उठता है उसमें लालिमा कम होती जाती है और सोने की तरह पीत रंग प्रस्फुटित होता है। लाल रंग में उत्तेजना हो सकती है पर पीले रंग में कोई उत्तेजना नहीं है। पद्मलेश्या वाले साधक के जीवन में क्रोध-मान-माया-मोह की अल्पता होती है। चित्त प्रशांत होता है। जितेन्द्रिय और अल्पभाषी होने से वह ध्यान-साधना सहज रूप से कर सकता है।[४८] पीत रंग ध्यान की अवस्था का प्रतीक है। एतदर्थ ही बौद्ध संन्यासियों के वस्त्र का रंग पीला है। वैदिक परम्पराओं के संन्यासियों के वस्त्र का रंग लाल है जो क्रांति का प्रतीक है और बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र का रंग पीला है वह ध्यान का प्रतीक है।

षष्टम लेश्या का नाम शुक्ल है। शुभ्र या श्वेत रंग समाधि का रंग है। श्वेत रंग विचारों की पवित्रता का प्रतीक है। शुक्ललेश्या वाले व्यक्ति का चित्त प्रशान्त होता है। मन, वचन, काया पर पूर्ण नियन्त्रण करता है। वह जितेन्द्रिय है।[४९] एतदर्थ ही जैन श्रमणों ने श्वेत रंग को पसन्द किया है। वे श्वेत रंग के वस्त्र धारण करते हैं। उनका मंतव्य है कि वर्तमान में हम में पूर्ण विशुद्धि नहीं है, तथापि हमारा लक्ष्य है शुक्लध्यान के द्वारा पूर्ण विशुद्धि को प्राप्त करना। एतदर्थ उन्होंने श्वेत वर्ण के वस्त्रों को चुना है।

लेश्याओं के स्वरूप को समझने के लिए जैन साहित्य में कई रूपक दिये हैं। उनमें से एक-दो रूपक हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। छः व्यक्तियों की एक मित्र मंडली थी। एक दिन उनके मानस में ये विचार उद्‌बुद्ध हुए कि इस समय जंगल में जामुन खूब पके हुए हैं। हम जायें और उन जामुनों को भरपेट खायें। वे छहों मित्र जंगल में पहुँचे। फलों से लदे हुए जामुन के पेड़ को देखकर एक मित्र ने कहा यह कितना सुन्दर जामुन का वृक्ष है। यह फलों से लबालब भरा हुआ है। और फल भी इतने बढ़िया हैं कि देखते ही मुँह में पानी आ रहा है। इस वृक्ष पर चढ़ने की अपेक्षा यही श्रेयस्कर है कि कुल्हाड़ी से वृक्ष को जड़ से ही काट दिया जाय जिससे हम आनन्द से बैठकर खूब फल खा सकें।

दूसरे मित्र ने प्रथम मित्र के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा संपूर्ण वृक्ष को काटने से क्या लाभ है? केवल शाखाओं को काटना ही पर्याप्त है।

तृतीय मित्र ने कहा—मित्र, तुम्हारा कहना भी उचित नहीं है। बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटने से भी कोई फायदा नहीं है। छोटी-छोटी शाखाओं को काट लेने से ही हमारा कार्य हो सकता है। फिर बड़ी शाखाओं को निरर्थक क्यों काटा जाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ मित्र ने कहा—मित्र, तुम्हारा कथन भी मुझे युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। छोटी-छोटी शाखाओं को तोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल फलों के गुच्छों को ही तोड़ना पर्याप्त है।

पाँचवें मित्र ने कहा—फलों के गुच्छों को तोड़ने से क्या लाभ है, उस गुच्छे में तो कच्चे और पक्के दोनों ही प्रकार के फल होते हैं। हमें पके फल ही तोड़ना चाहिए। निरर्थक कच्चे फलों को क्यों तोड़ा जाय?

छठे मित्र ने कहा—मुझे तुम्हारी चर्चा ही निरर्थक प्रतीत हो रही है। इस वृक्ष के नीचे टूटे हुए हजारों फल पड़े हुए हैं। इन फलों को खाकर ही हम पूर्ण सन्तुष्ट हो सकते हैं। फिर वृक्ष, टहनियों और फलों को तोड़ने की आवश्यकता ही नहीं।

प्रस्तुत रूपक[५०] के द्वारा आचार्य ने लेश्याओं के स्वरूप को प्रकट किया है। छह मित्रों में पूर्व-पूर्व मित्रों के परिणामों की अपेक्षा उत्तर-उत्तर मित्रों के परिणाम शुभ-शुभतर और शुभतम हैं। क्रमशः उनके परिणामों में संक्लेश की न्यूनता और मृदुता की अधिकता है। इसलिए प्रथम मित्र के परिणाम कृष्णलेश्या वाले हैं, दूसरे के नीललेश्या वाले हैं तीसरे की कापोतलेश्या, चतुर्थ मित्र की तेजोलेश्या, पाँचवें की पद्मलेश्या और छठे मित्र की शुक्ललेश्या है।

एक जंगल में डाकुओं का समूह रहता था। वे लूटकर अपना जीवनयापन करते थे। एक दिन छह डाकुओं ने सोचा कि किसी शहर में जाकर हम डाका डालें। वे छह डाकू अपने स्थान से प्रस्थित हुए। छह डाकुओं में से प्रथम डाकू ने एक गाँव के पास से गुजरते हुए कहा—रात्रि का सुहावना समय है। गाँव के सभी लोग सोए हैं। हम इस गाँव में आग लगा दें ताकि सोये हुए सभी व्यक्ति और पशु-पक्षी आग में झुलस कर खतम हो जायेंगे। उनके करुण-क्रन्दन को सुनकर बड़ा आनन्द आयगा।

दूसरे डाकू ने कहा—बिना मतलब के पशु-पक्षियों को क्यों मारा जाये? जो हमारा विरोध करते हैं उन मानवों को ही मारना चाहिए।

तीसरे डाकू ने कहा—मानवों में भी महिला वर्ग और बालक हमें कभी भी परेशान नहीं करते। इसलिए उन्हें मारने की आवश्यकता नहीं। अतः पुरुष वर्ग को ही मारना चाहिए।

चतुर्थ डाकू ने कहा—सभी पुरुषों को भी मारने की आवश्यकता नहीं है। जो पुरुष शस्त्रयुक्त हों केवल उन्हें मारना चाहिए।

पाँचवें डाकू ने कहा—जिन व्यक्तियों के पास शस्त्र हैं किन्तु वे हमारा किसी भी प्रकार का विरोध नहीं करते उन व्यक्तियों को मारने से भी क्या लाभ?

छठे डाकू ने कहा—हमें अपने कार्य को करना है। पहले ही हम लोग दूसरों का धन चुराकर पाप कर रहे हैं, और फिर जिसका धन हम अपहरण करते हैं, उन धनिकों के प्राण को लूटना भी कहाँ की बुद्धिमानी है? एक पाप के साथ दूसरा पाप करना अनुचित ही नहीं बिलकुल अनुचित है।

इन छह डाकुओं के भी क्रमशः विचार भी क्रमशः एक दूसरे से निर्मल होते हैं, जो उनकी निर्मल-भावना को व्यक्त करते हैं।[५१]

उत्तराध्ययन निर्युक्ति में[५२] लेश्या शब्द पर निक्षेप दृष्टि से चिन्तन करते हुए कहा है कि लेश्या के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप होते हैं। नो-कर्मलेश्या और नो-अकर्मलेश्या ये दो निक्षेप और भी होते हैं। नो-कर्म लेश्या के जीव नो-कर्म, और अजीव नो-कर्म ये दो प्रकार हैं। जीव नो-कर्म लेश्या भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक के भेद से वह भी दो प्रकार की है। इन दोनों के कृष्ण आदि सात-सात प्रकार हैं।

अजीव नो-कर्म द्रव्यलेश्या के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारक, आभरण, छादन, आदर्श, मणि तथा कामिनी ये दस भेद हैं और द्रव्य कर्म लेश्या के छह भेद हैं।

आचार्य जयसिंह ने संयोगज, नाम की सातवीं लेश्या भी मानी है जो शरीर की छाया रूप है। कितने ही आचार्यों का मन्तव्य है कि औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहरकमिश्र, कार्मण काय का योग ये सात शरीर हैं तो उनकी छाया भी सप्तवर्णात्मिका होगी, अतः लेश्या के सात भेद मानने चाहिए।[५३]

लेश्या के सम्बन्ध में एक गम्भीर प्रश्न है कि किस लेश्या को द्रव्य-लेश्या कहें और किसे भाव-लेश्या कहें?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर द्रव्य-लेश्या के अनुरूप भाव परिणति बतायी गयी है, तो कहीं पर द्रव्यलेश्या के विपरीत भाव-परिणति बतायी गई है। जन्म से मृत्यु तक एक ही रूप में जो हमारे साथ रहती है वह द्रव्यलेश्या है। नारकीय जीवों में तथा देवों में जो लेश्या का वर्णन किया गया है वह द्रव्यलेश्या की दृष्टि से किया गया है। यही कारण है कि तेरह सागरिया जो किल्विषिक देव हैं वे जहाँ एकान्त शुक्ललेश्यी हैं वहाँ वे एकान्त मिथ्यादृष्टि भी हैं। प्रज्ञापना में ताराओं का वर्णन करते हुए उन्हें पांच वर्ण वाले और स्थित लेश्या वाले बताया है।[५४] नारक और देवों को जो स्थित लेश्या कहा गया है संभव है पाप और पुण्य की प्रकर्षता के कारण उनमें परिवर्तन नहीं होता हो। अथवा यह भी हो सकता है कि देवों में पर्यावरण की अनुकूलता के कारण शुभ द्रव्य प्राप्त होते हों और नारकीय जीवों में पर्यावरण की प्रतिकूलता के कारण अशुभ द्रव्य प्राप्त होते हों। वातावरण से वृत्तियाँ प्रभावित होती हैं। मनुष्यगति और तिर्यञ्च गति में अस्थित लेश्याएँ हैं। पृथ्वीकाय में कृष्ण, नील और कापोत ये तीन अप्रशस्त लेश्याएँ बतायी हैं। ये द्रव्यलेश्या है या भावलेश्या? क्योंकि स्फटिक मणि, हीरा, मोती, आदि रत्नों में धवल प्रभा होती है, इसलिए द्रव्य अप्रशस्त लेश्या कैसे संभव है? यदि भाव लेश्या को माना जाय तो भी प्रश्न है कि पृथ्वीकाय से निकलकर कितने ही जीव केवल ज्ञान को प्राप्त करते हैं तो पृथ्वीकाय के उस जीव ने अप्रशस्त भाव-लेश्या में केवली के आयुष्य का बन्धन कैसे किया? भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में चार लेश्याएँ हैं—कृष्ण, नील, कापोत और तेजो। तो क्या कृष्णलेश्या में आयु पूर्ण करने वाला व्यक्ति असुरादि देव हो सकता है? यह प्रश्न आगममर्मज्ञों के लिए चिन्तनीय है। कहाँ पर द्रव्य लेश्या का उल्लेख है और कहाँ पर भावलेश्या का उल्लेख—इसकी स्पष्ट भेद-रेखा आगमों में की नहीं गयी है जिससे विचारक असमंजस में पड़ जाता है।

उपर्युक्त पंक्तियों में जैन दृष्टि से लेश्या का जो रूप रहा है उस पर और उसके साथ ही आजीवक मत में, बौद्ध मत में व वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में लेश्या से जो मिलता-जुलता वर्णन है उस पर हमने बहुत ही संक्षेप में चिन्तन किया है। उत्तराध्ययन, भगवती, प्रज्ञापना और उत्तरवर्ती साहित्य में लेश्या पर विस्तार से विश्लेषण है, किन्तु विस्तार भय से हमने जान करके भी उन सभी बातों पर प्रकाश नहीं डाला है। यह सत्य है कि परिभाषाओं की विभिन्नता के कारण और परिस्थितियों को देखते हुए स्पष्ट रूप से यह कहना कठिन है कि अमुक स्थान पर अमुक लेश्या ही होती है। क्योंकि कहीं पर द्रव्यलेश्या की दृष्टि से चिन्तन है, तो कहीं पर भावलेश्या की दृष्टि से और कहीं पर द्रव्य और भाव दोनों का मिला हुआ वर्णन है। तथापि गहराई से अनुचिन्तन करने पर वह विषय पूर्णतया स्पष्ट हो सकता है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी जो रंगों की कल्पना की गयी है उनके साथ भी लेश्या का किस प्रकार समन्वय हो सकता है इस पर भी हमने विचार किया है। आगम के मर्मज्ञ मनीषियों को चाहिए कि इस विषय पर शोधकार्य कर नये तथ्य प्रकाश में लाये जायँ।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ स्थल

१. **बृहद् वृत्ति, पत्र ६५०**

लेशयति-श्लेषयतीवात्मनि जननयनानीति लेश्या-अतीव चक्षुराक्षेपिका स्निग्धदीप्त रूपा छाया।

२ **मूलाराधना ७/१९०७**

जह बाहिरलेस्साओ, किण्हादीओ हवंति पुरिसस्स।
अब्भन्तरलेस्साओ, तह किण्हादीय पुरिसस्स॥

३ **(क) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ४६४**

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण॥

(ख) उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५३९

४ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ५४०

५ गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ४८९, प० सं० (प्रा०) १।१४२-३।

६ धवला ७, २, १, सू० ३, पृ० ७

७ सर्वार्थसिद्धि २/६, तत्त्वार्थराजवार्तिक २/६/८

८ तत्त्वार्थराजवार्तिक २, ६, ८, पृ० १०९

९ धवला १, १, १, ४, पृ. १४९

१० ततेणं से उसु उड्ढं वेहासं उव्विहिए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं अभिहणई वत्तेति लेस्सेत्ति।

—भग० २/५। उ०-६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११ अविहिल्लेसे—भगवती २-२;उ०-१
१२ आचारांग, अ० ५
१३ प्रज्ञापना, पद २
१४ प्रज्ञा० पद, १७ टीका० पृ० ३३३
१५ कर्म द्रव्यलेश्या इति सामान्याऽभिधानेऽपि शरीर नामकर्म द्रव्याण्येव कर्म द्रव्यलेश्या। कार्मण शरीरवत् पृथगेव कर्माष्टिकात् कर्म वर्गणा निष्पन्नानि कर्म लेश्या द्रव्यानीति तत्त्वं पुनः।—**उत्तरा० अ० ३४ टी० पु०, ६५०**
१६ प्रज्ञापना० १७ टीका, पृ० ३३०
१७ अयदोत्ति छ लेस्साओ, सहतियलेस्सा दु देसविरद तिये।
तत्तो सुक्कालेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु॥—**गोम्मटसार, जीवकाण्ड**, ५३१
१८ भावलेश्या कषायोदयरंजितायोग प्रवृत्तिरिति कृत्या औदयिकी व्युच्यते,—**सर्वार्थसिद्धि अ०** २, **सू०** २
१९ जोग पउत्ती लेश्या कसाय उदयाणु रंजिया होइ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बन्ध चउष्वं समुद्दिठं॥—**जीवकाण्ड**, ४८६
२० (क) उत्तराध्ययन अ० ३४—टी० पृ०. ६५०
(ख) प्रज्ञापना १७, पृ०, ३३१
२१ उत्तराध्ययन, अ० ३४, पृ० ६५०
२२ न लेश्या स्थिति हेतवः किन्तु कषायाः लेश्यास्तु कषायोदयान्तर्गताः अनुभाग हेतव अतएव च स्थितिपाक विशेषस्तस्य भवति लेश्या विशेषेण।—**उतरा० ३४, पृ० ६५०**
(ख) प्रज्ञा० १७, पृ० ३३१
२३ लेसाणां निक्खेवो च उक्कओ दुविहो उ होइ नायव्वो—**५३४**
२४ उत्तराध्ययन, ३४।५६
२५ उत्तराध्ययन ३४।५७
२६ उत्तराध्ययन ३४।३
२७ तत्त्वार्थराजवार्तिक १६, पृ० २३८
२८ Sacred Books of the East, Vol. XLV Introduction, p. XXX
२९ अंगुत्तरनिकाय ६-६-३ भाग ३, पृ० ९३
३० दीघनिकाय १।२, पृ० १९, २०
३१ अंगुत्तरनिकाय ६।६।३, भाग ३, पृ० ३५—९३, ९४।
३२ (क) अंगुत्तरनिकाय ६।६।३, भाग ३, पृ० ९३-९४
(ख) दीघनिकाय, ३।१०, पृ० २२५
३३ षड् जीववर्णा परमं प्रमाणं, कृष्णो धूम्रो नीलमथास्य मध्यम्।
रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु, हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम्॥—**महाभारत, शांतिपर्व**, २८०।३३
३४ महाभारत, शांतिपर्व, २८०।३४-४७
३५ महाभारत, शांतिपर्व २९१।४-५
३६ शुक्ल कृष्णे गती ह्येते, जगतः शाश्वतो मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽवतते पुनः॥—**गीता** ८।२६
३७ धम्मपद, पंडितवग्ग, श्लोक १९
३८ पातञ्जल योगसूत्र ४।७
३९ अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः।—**श्वेताश्वतर उपनिषद**, ४।५
४० सांख्य कौमुदी, पृ० २००
४१ आपः श्वेता क्षितिः पीता, रक्तवर्णो हुताशनः।
मारतो नीलजीभूतः, आकाशः सर्ववर्णकः।
—**शिवस्वरोदय, भाषा टीका, श्लो०१५६, पृ० ४२**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२ देखिए—"अणु और आभा" ले० प्रो० जे० सी० ट्रस्ट
४३ देखिए—पूज्य प्रवर्तक श्री अंबालाल जी म० अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २५२
४४ उत्तराध्ययन ३४।२१-२२।
४५ वही ३४।२२-२४
४६ उत्तराध्ययन सूत्र ३४।२५-२६
४७ वही ३४।२७-२८
४८ वही ३४।२९-३०।
४९ वही ३४।३१-३२
५० आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, पृ०, २४५
५१ लोक प्रकाश, सर्ग ३, श्लोक ३६३-३८०
५२ जाणग भवियसरीरा तव्वइरित्ता य सापुणो दुविहा।
कम्मा नो कम्मे या नो कम्मे हुन्ति दुविहा उ ॥३५॥
जीवाणमजीवाणय दुविहा जीवाण होइ नायव्वा।
भवमभवसिद्धियाणं दुविहाणवि होइ सत्तविहा ॥३६॥
अजीव कम्मनो दव्वलेसा सा दसविहा उ नायव्वा।
चंदाण य सूराण य गहगण णक्खत्तताराणं ॥३७॥
आभरण छायणा दंशगाण मणि कांगिणी ण जा लेसा।
अजीव दव्वलेसा नायव्व दसविहा एसा ॥३८॥—उत्तराध्ययन ३४, पृ०, ६५०

५३ जयसिंह सूरि—षट् सप्तमी संयोगजा इयं च शरीरच्छायात्मका परिगृह्यते अन्येस्त्वौदारिकौदारिकमिश्रमित्यादि भेदतः सप्तविधत्वेन जीवशरीरस्य तच्छायामेव कृष्णादिवर्णरूपां नोकर्माणि सप्तविधां जीव द्रव्य लेश्यां मन्यते तथा।
—उत्तरा० ३४, टीका० पृ०, ३५०

५४ ताराओ पञ्च वण्णओ ठिथले साचारिणो —प्रज्ञा० पद २

✡

पुष्कर वाणी

दर्जी वस्त्र को काटता है, फिर भी वह दोषी नहीं है।

डाक्टर मनुष्य के हाथ-पैर आदि अंगों का छेदन करता है, फिर भी वह दंडनीय नहीं है।

राज या मिस्त्री मकान को तोड़ता है, फोड़ता है फिर भी वह अपराधी नहीं है।

इसी प्रकार गुरु या अधिकारी भलाई और सुधार के लिए किसी को ताड़ना, तर्जना तथा दंड आदि देते हैं तो वे आक्रोश के पात्र नहीं, अपितु हितकारी ही कहलाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org